नगेन्द्र फौजदार

डीग, राजस्थान

आत्मकथ्य

मैं वो हूँ जो अपमान का विष पीकर बड़ा हुआ हूँ , मैं वो भी हूँ जिसने हमेशा दूसरों की गलती की सज़ा पाई और यहाँ तक मैं वो भी हूँ जिसकी हर ग़लती को गुनाह एवं हर त्रुटि को जघन्य अपराध माना गया।

मैं वो सिक्का हूँ जो अब चल नहीं सकता क्योंकि ला–ईलाज ईमानदारी ने घिस–घिसकर सिक्के का रंग–रूप बदल दिया है।
मैं वो हूँ जिसे डर लगता है उन सभी जीवों से जिनकी शक्लें इंसानों जैसी हैं और मैं वो भी हूँ जो ख़ुद को कभी सही सिद्ध नहीं कर सकता।

मैं वो हूँ जिसके कमरे से किताबों की महक आनी चाहिए थी लेकिन गंध आती है असमर्थता की, निर्धनता की। और इससे भी बढ़कर दुर्गंध आती है धधकते हुए स्वप्नों की।
मैं वो भी हूँ जो किसी को बचाने की कोशिश में ख़ुद ही घायल हो जाता हूँ और किसी के लिए झूठ बोलता हूँ। वैसे मैं चाहता हूँ कि मैं किसी भी हाल में झूठ न बोलूँ , न अपने लिए ; न किसी और के लिए, पर बोलना पड़ता है क्योंकि मेरी शक्ल भी इंसान जैसी है।

मैं किताबों से ईमानदारी समझ पाया कि यह किस तरह जीवन में हर मौके पर 'बरती' जा सकती है। किसी का कुछ लेकर लौटा पाना असम्भव है लेकिन 'लौटने' की समानता में ईमानदारी केवल यह नहीं है कि जितना लिया–उतना दिया, ईमानदारी ये है कि वक़्त पड़ने पर कितनी समानता रखी गई। मर्यादा वही है जो आपत्तिकाल में भी न खंडित हो, जो भंग हो जाए वो मर्यादा नहीं हो सकती, 'मान' हो सकता है। यह जरूरी नहीं कि बलात्कार केवल स्त्री का ही हो, पुरुष का बलात्कार भी होता है। बलपूर्वक किया गया अनैच्छिक–अनैतिक आचरण ही तो बलात्कार है।
और, मैं वही अभागा पुरुष हूँ जिसका बलात्कार उसकी 'सहमति' से हुआ लेकिन पहले भरमाया गया और अन्ततः दोषी भी मैं ही ठहराया गया ।

मैं वो हूँ जिसके तरीकों पर तो ग़ौर किया गया मगर इरादों को नजरअंदाज किया गया और यह सब भी मेरी इच्छा के विरुद्ध हुआ जो अवांछित, असह्य, अग्राह्य और अयाचित था ।
मैं वो हूँ जिसे एकान्त और अकेलेपन में अन्तर समझने में पूरे तीस साल बीत गए और जब यह समझ आया तब यह अन्तर व्यर्थ/क्यर्थ हो चुका था ।
मैं वो भी हूँ जिसे अकेलेपन का शाप लगा है और जो किसी भी देवी–देवता के आशीर्वाद से नहीं काटा जा सकता।